...माला-ग्रन्थमाला का तृतीय पुष्प

द्वादश-ज्योतिर्लिंग-माहात्म्य

प्रकाशक—

गौरीशंकर गनेड़ी वाला,

गोरखपुर ।

शिव-भक्त-माल

मनः प्रत्यक्चित्ते सविध मवधाया त्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्या ह्लादं ह्रद इव निमज्ज्या मृतमये
दधत्यन्तस्तत्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥ २५ ॥

भक्ति-ग्रन्थमाला का तृतीय पुष्प

द्वादश-ज्योतिर्लिङ्ग-माहात्म्य ।

[१२ शिवभक्तों की पावनी कथा]

लेखक व प्रकाशक—

गौरीशंकर गनेड़ीवाला,

गोरखपुर ।

सम्पदक—

"साहित्यरत्न" प० श्रीसरयूप्रसाद पाण्डेय (द्विजेन्द्र)

"साहित्य-शास्त्री, काव्यतीर्थ"

प्रथमवार १५०० | रामनवमी संवत् १९८८ | मूल्य ।-)॥

द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गानि ।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ॥ १ ॥
परल्यां वैजनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥ २ ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं शिवालये ॥ ३ ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥ ४ ॥

(बृहत्स्तोत्ररत्नाकरे)

मुद्रक—सहादुरराम,
हितैषी प्रिंटिंग वर्क्स, नीचोबाग, बनारस सिटी ।

द्वादश-ज्योतिर्लिंग-माहात्म्य

१-सोमनाथ।

चन्द्रदेव

दक्ष प्रजापति ने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओं का विवाह चन्द्रदेव से कर दिया। चन्द्रमा के समान लोक-विभूषण और लोकानन्दकारी पति को पाकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और इसी प्रकार उन सत्ताईस देवियों को पाकर चन्द्रदेव भी बहुत सन्तुष्ट हुए। पर उनका सबसे अधिक प्रेम रोहिणी पर था। इस कारण अन्य देवियों के हृदय में बहुत दुःख हुआ। यह भेददृष्टि सपत्नी होने के कारण उनके लिये असह्य थी। जब उनसे न रहा गया तब वे अपने पिता दक्ष की शरण गईं और उनसे यथार्थ स्थिति का वर्णन किया। यह वृत्तान्त सुनकर

दत्त चन्द्रमा के समीप गये और कहने लगे कि सब पत्नियों पर बराबर प्रेम रखना यह सबका कर्तव्य है। जो व्यक्ति भेदभाव रखता है वह मूर्ख समझा जाता है। इस लिये आपका यह धर्म है कि मेरी सब पुत्रियों पर समान प्रेम रखें और किसी एक पर अधिक आसक्ति न रखें। अब जो हुआ सो हुआ;पर भविष्य में ऐसी बात नहीं होना चाहिए।

ऐसा कहकर दत्त तो अपने धाम को चले गये; पर चन्द्रमा ने यह भेद भाव नहीं छोड़ा। अब रोहिणी पर उनका और भी अधिक अनुराग हो गया। अपने पिता के उपदेश का उलटा असर देखकर उन देवियों के मनमें और भी अधिक खेद हुआ और वे पुनः अपने पिता की शरण में गईं। दत्त प्रजापति अपनी सरल हृदया पुत्रियों का यह दुःख देख अत्यन्त व्यथित हुए और फिर चन्द्रमा को समझाने चले। चन्द्रमा के समीप जाकर उन्होंने बहुत समझाया और इस भेददृष्टिके अनेक दोष भी बताये। आपनेयहाँ तक कहा कि जो समान श्रेणीवालों में विषमता का व्यवहार करता है,वह नरक-गामी होता है। अतः विषमता रखना अनर्थकारी है; परन्तु चन्द्रमा की वह अमिट आसक्ति दूर न हुई। अन्त में दक्ष प्रजापति को अपने वचनों की अवहेलना देखकर क्रोध आगया और उन्होंने चन्द्रमा को शाप दे दी कि जा तू क्षयी हो जा। शाप के देते ही चन्द्रमा का क्षय होना प्रारम्भ हो गया। ओष-धीश द्विजराज के क्षय को देख,देवता-ऋषि आदि सभी चर-

अचर जीव बहुत चिन्तित हुए और सोचने लगे कि अब तो संसार का नाश हुआ।

पश्चात् चन्द्रमा की प्रार्थना से इन्द्र आदि देव तथा वसिष्ठ आदि मुनि पितामह ब्रह्मदेव के यहां गये और प्रार्थना करने लगे। पर ब्रह्माजी ने कहा कि जो भावी था, सो तो हो गया। उसमें अब कुछ परिवर्तन हो ही नहीं सकता, परन्तु मैं एक उपाय बताता हूँ उसके करने से चन्द्रमा की अवश्यमेव रक्षा हो सकती है।

उन्होंने कहा कि चन्द्रमा को देवताओं समेत प्रभासतीर्थ में जाकर मृत्युञ्जय भगवान् की आराधना करनी चाहिए। वहां शिवलिंग की स्थापना कर, उनके सामने घोर तपस्या करने से श्रीमहादेवजी प्रसन्न हो जायँगे और वरदान देकर चन्द्रमा को अक्षय कर देंगे।

इस प्रकार ब्रह्माजी के वचन सुनकर सब देवता लौटकर चन्द्रमा के समीप आये और सब वृत्तान्त कह सुनाये। यह सुन चन्द्रमा सब देवताओं को साथ लेकर प्रभासतीर्थ में गये और पार्थिव शिवार्चन बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ विधिविहित रीति से लगे। मृत्युञ्जय मन्त्र से पूजा करते और मृत्युञ्जय मंत्र ही का जप करते थे। इस प्रकार चन्द्रमा ने छः महीने तक घोर तप किया। इस बीच दस करोड़ मृत्युञ्जय मन्त्र का जप कर डाला। अन्त में भगवान् देवदेव ने प्रकट होकर चन्द्रमासे कहा कि मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इसलिये अभीष्ट वर मांगो।

चन्द्रमा ने हाथ जोड़कर स्तुति की और कहा कि हे महाराज! यदि आपही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे किस बात की कमी है। मैं क्षयरोग से बहुत पीड़ित हूं, उससे मुझे मुक्त कीजिये।

ऐसी प्रार्थना करनेपर शिवजी ने वरदान दिया कि कृष्ण-पक्षमें तुम्हारी एक २ कला क्षीण होगी और शुक्लपक्षमें तुम्हारी एक २ कला बढ़ेगी। इस प्रकार पूर्णमासी तक तुम पूर्ण हो जाया करोगे। उसी समय सब देवता और मुनि हर्षोत्फुल्ल होकर पहुँचे और शिवजी की स्तुति करते हुए चन्द्रमा को आशीर्वाद देने लगे।

सबने शंकर भगवान् से प्रार्थना की कि इसी प्रभासतीर्थ में आप पार्वती समेत भक्तों के उद्धार के लिये निवास करें। तबसे इस तीर्थ में निराकार प्रभु साकाररूप धारण कर ज्योतिर्लिंग के रूपमें विराजमान हुए। इस लिंग की देवता, गन्धर्व, ऋषि आदि सभी ने पूजा की। जैसा कि महाभारत में लिखा है :—

ऋषयश्चैव गन्धर्वा देवाश्चाप्सरसस्तथा।
लिंगमस्यार्चयन्तिस्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम्॥

विरावल से २॥ मील "सोमनाथ" पटन एक कसबा जूनागढ़ राज्य में है।

२--मल्लिकार्जुन ।

कार्तिकेय-गणेश

एक बार स्वामि कार्तिकेय और गणेश—दोनों कुमार शिव जी के पास जाकर अपने विवाह के लिये विवाद करने लगे कि सर्वप्रथम मेरा विवाह हो। दोनों के परस्पर विवाद के बाद दोनों कुमारों के लिये श्रीशिव-पार्वती ने यह निश्चय किया कि दोनों में सबसे पहले उसीका विवाह होगा, जो पृथ्वी की परिक्रमा करके सर्वप्रथम आ जाय। इस प्रतिज्ञा को स्वीकार करके कुमार कार्तिकेय तो पृथ्वी-प्रदक्षिणा के निमित्त उसी समय चल दिये; परन्तु बेचारे कुमार गणेशजी लम्बोदर होने के कारण सहसा वैसा करने में बिलकुल असमर्थ थे। अत एव उन्होंने शास्त्रानुकूल जगत् के माता-पिता परमेश्वर गिरिजा-शिव की ही सात बार वहीं पर प्रदक्षिणा की। अतः श्रीगणेशजी का नियमानुसार सर्वप्रथम विवाह हो गया।

जब कुमार परिक्रमा करके कैलास पर्वत पर आये, तब नारदजीने उन्हें अपने निकट बुलाकर श्रीगणेशजीके शुभविवाह की चर्चा की। यह सुनतेही कुमार को बुरा मालूम हुआ। वे शीघ्रही वहां से उठकर, शिव-पार्वती के समझाने पर भी उनको प्रणाम करके—क्रौंच पर्वत पर चले गये। कुछ दिनों बाद जब

पार्वतीजी से कुमार वियोग का दुःख न सहा गया, तब उन्होंने देवर्षि नारद को कुमार के पास भेजा।

नारदजी ने क्रौंच पर्वत पर जा, कुमार को बहुत समझाया और वहां से उनको लौट आने का प्रयत्न भी किया; परन्तु कुमार ने एक न सुनी और नारद को अकेला लौटा दिया। यहां पार्वती जी कुमार के बिना व्याकुल हो गईं थीं। नारदजी के समझाने पर पार्वतीजी शिवजी को साथ लेकर क्रौंच पर्वत पर गयीं। माता-पिता का आगमन सुनकर कुमार कार्तिकेय क्रौंच पर्वत से तीन योजन दूर चले गये। क्रौंच पर्वत पर जाकर संसार की भलाई के लिये वे दोनों ज्योतिःस्वरूप लिंग के रूप में हो गये। पुत्रस्नेह से वे दोनों कुमारों को देखने के निमित्त प्रतिदिन जाया करते थे।

जो मनुष्य उस ज्योतिःस्वरूप का दर्शन करता है, वह निःसन्देह अपने मनोरथ को पाता है। और फिर कभी गर्भ का दुःख उसे नहीं व्यापता। अन्त में वह परम आनन्द को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है।

दुःखं च दूरतो याति शुभमात्यन्तिकं लभेत्।
जननीगर्भसम्भूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ॥ २१ ॥

(शिव० रुद्र० सं० ४ अ० १६)

"बिनागुड़" मारकपुर स्टेशन से जाना होता है।

३--महाकाल।

शिवभक्त 'श्रीकर' गोप

उज्जैन नगरी में 'चन्द्रसेन' नामक एक राजा रहते थे। वे महाकाल शिव की प्रेम सहित पूजा किया करते थे। एक दिन वे उनके पूजन-ध्यान में मग्न थे। इसी बीच एक पाँच वर्ष का गोप-बालक अपनी माता के साथ वहाँ आ पहुंचा। उस बालक ने आश्चर्य तथा प्रेम से वह शिवपूजन देखकर प्रणाम किया और एक विचित्र भाव से उस कौतुक को हृदय में रख, शिवपूजन की उत्कण्ठा प्रकट करने लगा। मार्ग में, प्राप्त एक सुन्दर पत्थर के टुकड़े को घर लाया। उसे शिवलिंग समझ, भक्ति-भाव के साथ, विधिवत् पुष्प-चन्दनादि चढ़ाकार उन की पूजा करने लगा और उनके ध्यान में मग्न होगया।

इसी बीच उसकी माता उसे भोजन के लिये बुलाने आई। जब उसके अनेक प्रयत्न करने पर भी बालक ने नहीं सुना और न ध्यान ही छोड़ा, तब उसकी माता ने नेत्र मूंद कर शिवध्यान करते हुए अपने बालक को बलपूर्वक उठा ले चलने का विचार दृढ़ करके उस शिवलिंग को फेंक दिया। और बालक को उठा-कर ले चलने लगी। किसी प्रकार घर पहुंच कर लड़के ने अपने ध्यान-पूजन को माताद्वारा भंग जानकर भगवान् की स्तुति

करना प्रारम्भ किया। वारंवार "हा देवदेव, हा परमात्मन्! शम्भो !! दया करो, मुझे बालक जानकर मेरे अपराधों को क्षमा करो"-इस प्रकार विलाप करता हुआ वह पृथ्वीपर मूर्च्छित हो गिर पड़ा। तदनन्तर कुछ सचेत होकर नेत्र खोला और देखा तो सामने एक अपूर्व विचित्रता देखने में आई। वह अपने घर के सामने महाकाल भगवान् का विचित्र मन्दिर—जिसमें सोने के किवाड़ लगे हुए हैं, जो रत्नजटित हैं और जिसके भीतर एक प्रकाशमान ज्योतिर्लिंग देदीप्यमान हो रहा है—जिसके प्रकाश से रात्रि में दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती—ऐसी विशाल मूर्ति एवं अनुपम मन्दिर देखकर वह आश्चर्यित हो गया। तत्पश्चात् वह गोपसुत भगवान् महादेव की स्तुति करने लगा।

इस प्रकार जब सूर्यास्त हो आया तब वह बालक अपने घर गया। वहाँ अपनी माता को देववधू की भांति सोती हुई जान कर उसे जगाया। माता ने जागते ही अपने घर के सामने एक अद्भुत मन्दिर देखा,पुत्र को सामने खड़ा देखकर प्रेम से उसको गोद में बैठा लिया और प्रेमालिंगन करके शिवभक्त उस बालक की मनही मन प्रशंसा की। इधर शंकर जी की अनुकम्पा से गोपी और गोपसुत आनन्द करने लगा। उधर महाराज चन्द्रसेन गोपी के पुत्र का आश्चर्यमय चरित्र सुनकर उसके घर आये। वहाँ महाकालेश्वर भगवान् की अपूर्व मूर्त्ति एवं विशाल मन्दिर को देखकर राजा चकित हो गये। गोपसुत को बुलाकर

हृदय से लगाया और उसके इस कार्य की भूरि २ प्रशंसा की और मनही मन भाग्य की सराहना कर, वे स्वयं भी कृतार्थ हुए।

उसी समय भगवान् की दया से कपिराज श्रीहनुमानजी वहाँ प्रकट हुए, और राजा आदि मनुष्यों से कहने लगे:— "हे मनुष्यो! संसार में शीघ्र कल्याणकारी भगवान् शिवजी को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। तुम लोग प्रत्यक्ष ही गोपसुत को देख रहे हो। इसने कौन सी तपस्या की है? ऋषि-मुनि हजारों वर्ष तक तप करके जो फल नहीं पाते, वह इसने बालकपन में ही पा लिया! यह आशुतोष महाकाल भगवान् की दया का ही फल है। इसलिये तुम लोग भी इनके दर्शन से कृतार्थ होओ और यह भी स्मरण रक्खो कि इस बालक की आठवीं पीढ़ी में महा यशस्वी 'नन्दगोप' नामक एक राजा होगा। उसीके यहाँ भगवान् श्रीकृष्णजी पुत्ररूप से लीला करेंगे, और समस्त गोपों को अपनी अद्भुत लीलाओं द्वारा चकित करेंगे।" इस प्रकार हनुमान्जी सन्देशा देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। यथासमय महाकाल भगवान् का पूजन-ध्यान करके श्रीकर गोप और महाराज चन्द्रसेन भी सपरिवार शिवधाम को गये। जो इस चरित को मन लगाकर सुनेगा और पढ़ेगा, वह भी शीघ्र ही अपने मनोरथों को पाकर अन्त में सद्गति पावेगा।

कालेन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः।
सामाराध्य महाकालं भजेतुः परमं पदम्॥ ७६॥

प्रसिद्ध उजैन B. B. & C. I. रेलवे। (शि०पु०रु०सं०४अ०)

४-ओंकारेश्वर ।

देवसमूह

प्राचीन काल में नर्मदा के पावन तटपर देव और दानव दोनों ही आनन्द से निवास करते थे। जब समय के परिवर्तन से दानवों की शक्ति अधिक हो गई, तब दोनों में परस्पर घोर संग्राम हुआ। अन्त में देवगण हारकर दानवों के भय से भयभीत हो, शरणागत-वत्सल भगवान् शिवजी की शरण में गये। देवताओं को यह दृढ़ निश्चय था कि शिवजी शरणागत* की रक्षा करने वाले हैं। वे शरण में आये हुए को कभी नहीं त्यागते। देवों ने विचार किया कि भगवान् को किसी तरह शीघ्र संतुष्ट करना चाहिये इसी बीच देवगुरु वृहस्पतिजी बोलेः—हे देवताओ! दानवों को परास्त करनेवाला यज्ञ करो। क्योंकि यज्ञ से ही प्रभु संतुष्ट होते हैं। इस तरह वृहस्पतिजी की बात सुन कर ब्रह्माजी बोलेः—दानवों के भय से हम सबों को मन्त्रों का विस्मरण (भूल) हो गया।

इस तरह देवता लोग विचार कर ही रहे थे कि इतने में भक्तों के उद्धार करने वाले शरणागत-वत्सल आशुतोष शिवजी

---

* विमुञ्चति न पुण्यात्मा शरण्यःशरणागतान् ।
(महा० भा० अनु० पर्व० अ० १६१)

पाताल को फोड़कर ॐङ्कारपूर्वक भूर्भूवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को उच्चारण करते हुए महाप्रलय की अग्नि के समान पर्वत से प्रादुर्भूत हुए।

करोड़ों सूर्य के समान तेजवाला आदि-अन्त-रहित ऐसे श्रेष्ठ लिंग का किसी ने कभी दर्शन नहीं किया था। वही लिंग रूप शिवजी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारो वेद, वेदांग और शास्त्रों के सहित ब्रह्माजी से बोलेः—

हे ब्रह्मदेव! लोक में शांति फैलाने वाले सौम्य यज्ञ को तुम स्वेच्छापूर्वक करो। मैं तुझे वेदों को देता हूँ। तदनन्तर ब्रह्मा ने भगवान् की आज्ञा पा, लोकों की शान्ति वाला सौम्य यज्ञ किया। तब देवताओं का बल बढ़ा देख कर, दैत्य गण उनके भय से दशों दिशाओं की ओर भागने लगे। ओंङ्कार के प्रभाव से सब देवता निर्भय हो गये। फिर महादेव जी का पूजन कर देवता लोग आनन्दपूर्वक स्वर्ग को गये। कल्पान्त तक रहने वाले, देवता और दैत्यों करके नमस्कार किये गये ये महालिंग 'ॐकारेश्वर' महादेव सबको मोक्ष देने वाले हैं। कल्प के अन्त में इस लिंग में सब देवता लीन हो जाते हैं। इसीसे इस लिंग को अमर, ब्रह्मा, हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं। पिङ्गलेश्वर नामक सूर्य और पितृश्वर चन्द्रमा, छवो अङ्ग, पद और क्रम के सहित तीनों वेद जहां सिद्ध हुए हैं।

इस लिङ्गके पूजन करने से प्राणी विष्णुलोक में पूजित

होता है। इन पांचों लिंगों का नाश नहीं होता। नर्मदातट में विद्यमान (१)मार्कण्डेय लिंग (२) अविमुक्त (३) केदारनाथ, (४)अमरेश्वर, (५)ॐकारनाथ-इन पवित्र पाँचों लिंगों को प्रातः काल उठकर जो स्मरण करता है, वह सब तीर्थों के फल को पाकर शिवलोक में पूजित होता है। यथाः—

सर्वतीर्थफलं प्राप्य शिवलोकं महीयते ॥ ४६ ॥

(खो० खं० अ० ४७)

ॐङ्कार महादेव को छोड़कर समुद्र पर्यन्त पांच कलावाला कोई रुद्र नहीं है। वेद रहस्य के सहित चारों वेद जिनके पांचों मुख हैं और नव शक्तियों से युक्त नर्मदा के तीर में विद्यमान ॐकार तीनों लोकों में पूजे जाते हैं। ॐकार ही उनका पश्चिम वाला मुख है—जिसका सद्योजात नाम है और जो शंख, कुन्द, चन्द्रमा के समान है। जिनसे ऋग्वेद निकला है उसके देवता ब्रह्माजी हैं और उत्तर वाला मुख मन को हरने वाला पीले रंग का वामदेव नामक मुख है, उससे यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई है। उसके देवता विष्णु जी हैं। मेघों के समान रंग वाला दक्षिण दिशा में विद्यमान अघोर नाम का मुख है, उससे सामवेद उत्पन्न हुआ। उसका सूर्य, काल, अग्नि देवता है। वह पूर्व में केश के समान लाल व पीला तत्पुरुष नामक मुख है—जिससे अथर्ववेद निकला है, उसका वरुण देवता है। पांच रंग का बड़ा भारी ईशान नाम का मुख है। वेदों के सिद्धान्त उस मुख से गाये

गये है, उसके देवता सोम हैं। छठा सदाशिव नाम का मुख है जिसके हिस्से नहीं हो सकते, और जो दोषों से रहित है। उसमें कोई चिह्न नहीं है, न वह किसी से जाना ही जाता है। उसको जान कर जीव मुक्त हो जाता है-इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

निर्लक्षं लक्षहीनन्तु ज्ञात्वा मोक्षन्न संशयः।
एतत्ते कथितं राजन्नोङ्कारस्य तु वर्णनम् ॥७६॥

इस ओंङ्कारनाथ महादेव के यहाँ B. B. & C. रेलवे में "मोरतक्का," स्टेशन से जाना होता है।

५-वैद्यनाथजी।

राक्षसेन्द्र रावण

राक्षसों में श्रेष्ठ रावण ने जब कैलास पर्वत पर भक्ति पूर्वक शिवजीकी आराधना की, तब कुछ काल तक आराधना करने पर शिवजी को प्रसन्न करने के निमित्त सिद्धि के स्थान हिमालय पर्वत के दक्षिण वृक्षखंडों में तप किया। वहां उसने भूमि में गढ़ा खोद, उसमें अग्नि स्थापन कर, उसके समीप में शिवलिंग स्थापित कर, ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तापता, वर्षा में मैदान में रहता, शीत काल में जल के मध्य में स्थित रहता—इस प्रकार

अनेक कष्ट सहने पर भी जब शिवजी प्रसन्न न हुए, तब उस रावण ने अपने सिर को काट २ कर, बलिदान पूर्वक शिवजी का पूजन करना प्रारम्भ किया। रावण ने क्रमानुसार जब नौ सिर काटे तब, एक सिर शेष रहने पर शिवजी प्रसन्न हो गये और भक्तवत्सल महादेवजी सन्तुष्ट हो वहां प्रकट हुए। उन्होंने उसके सिरों को पहले के समान करके उसको वर प्रदान किया।

उस रावण ने शिवजी की प्रसन्नता पा हाथ जोड़, नम्र होकर कल्याणकारी भगवान् से प्रार्थना की--हे देव! आप प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये, कि मैं आपके शिवलिंग को लंका-पुरी में ले जाऊं। मेरी इच्छा पूर्ण करो, मैं आपकी शरण में हूँ।

भगवान् शिवजी बोले - हे रावण! श्रेष्ठ ज्योतिलिंग को अपने घर ले जाओ। यदि तुम कहीं बीच में इस लिंग को भूमि पर रखोगे तो यह वहीं स्थित रह जायगा। इस प्रकार भगवान् की आज्ञा पा, रावण ज्योतिलिंग को लेकर घर चला। मार्ग में शिवजी की माया से रावण को लघुशंका की इच्छा हुई और वह पौलस्त्य रावण अपने मूत्र वेग को न रोक सका। उसने वहां एक गोप को देख, उसे कहकर ज्योतिर्लिंग दे दिया और आप लघुशंका करने लगा। जब एक एक मुहूर्त बीतने पर वह गोप शिवलिंग के भार से दुःखी होने लगा, तब उसे पृथ्वी में रख दिया, तब वह ज्योतिर्लिंग वहां ही वज्र सदृश स्थित हो गया। यह दिव्य लिंग दर्शन करने से सब पापों का दूर करने वाला तथा सम्पूर्ण कामनाओं को शीघ्र देने वाला "वैद्यनाथेश्वर" नाम से प्रसिद्ध हुआ

मुक्ति देने वाले उस लिंग को वहां इस प्रकार स्थित हुए जान रावण लंकापुरी को लौट गया।

उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता वहाँ आये। उन्होंने विशेष प्रीति से उनकी पूजा की। शिवजी का दर्शन कर देवगण वहीं प्रतिष्ठा और स्तुति कर, पुनः स्वर्ग को चले गये।

प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः।
वैद्यनाथेति संप्रोच्य नत्वा नत्वा दिवं ययुः ॥२५॥

(शि० पु०)

यह वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ देवघर नाम की E.I. रेलवे में है। जसीडीह जक्शन से ३ मील पर है।

६-भीमशंकर

शिवभक्त राजा कामरूपेश्वरजी

कामरू देश में "कामरूपेश्वर" नामक एक प्रतापी राजा हुए, ये अनन्य शिव-भक्त थे। इनका सम्पूर्ण समय शिवजी के पार्थिव-पूजन में ही व्यतीत होता था। एक बार कामरू देश में "भीम" नामक एक भयंकर राक्षस ने ऋषि मुनियों को नाना प्रकार की पीड़ा पहुँचाकर अत्यन्त चिन्तित कर दिया। यज्ञ व्रत, पूजा-

पाठ में विघ्न डालने लगा। यहाँ तक कि सब देवताओं और ऋषियों को तंग करके वहाँ से निकाल दिया और इधर-उधर तपस्वियों को ढूंढ़ने लगा।

एक दिन महाराज कामरूपेश्वर शिवजी के ध्यान में मग्न हो, उनका पूजन कर रहे थे, इसी बीच वह राक्षस वहाँ पहुँचा और उस भक्त राजा को मारने के लिये तलवार खींचकर उनके निकट खड़ा हो गया। राजा से भय दिखाते हुए पूछा—"तुम कौन हो? इस समय क्या कर रहे हो? सत्य २ कह दो, नहीं तो आज मैं तुझे सपरिवार मार डालूँगा।" राक्षस के ऐसे नृशंस एवं कठोर शब्दों को सुनकर राजा कुछ भयभीत तो हुए, पर धैर्य धारण करके मन में सोचने लगे कि जिस शंकर जी की पार्थिवपूजा मैं प्रतिदिन करता हूँ, जिसके बल से इन्द्रादि देवता राज-सुखोपभोग करते हैं और जिसके आधीन समस्त संसार के चराचर जीव हैं, वही परमेश्वर इस पार्थिव-लिंग में भी विद्यमान हैं, तो क्या ये संकट पड़ने पर मेरी सहायता न करेंगे? इस प्रकार धैर्य धारण कर, राजा ने महादेव जी से प्रार्थना की, कि हे उमेश! मैं आपका भक्त हूँ और आपकी ही शरण में आया हूँ। आप सर्वान्तर्यामी हैं। जो इच्छा हो, सो कीजये। ऐसा सोचकर उस अधम राक्षस का तिरस्कार करते हुए राजा बोले:—'ऐ राक्षसेश्वर! भक्तभयहारी आशुनाथ भगवान् शंकर का मैं भजन कर रहा हूँ।" (भजामि शंकर देवं स्वभक्तपरिपालकम्) महाराज कामरूपेश्वर के इस

ोरवचन को सुनकर राक्षसेन्द्र भीम क्रोध से लाल होकर गर्व के
सहित बोला:-तुम्हारा शिव-शंकर मेरा जाना हुआ है। वह क्या
करेगा? जिसको मेरे चाचा रावण ने वश में कर रखा था, उसी
शिव का तुम भजन कर रहे हो। इस काम को छोड़ दो नहीं तो मैं
तुझे भयंकर दण्ड दूँगा और तुम्हारे शिव का बल भी देख लूंगा।
राजा ने कहा—चाहे तुम इसके लिये जो चाहो, सो करो।
परन्तु जब तक मेरे कण्ठ में प्राण रहेगा, तब तक मैं न शिव-
पूजन छोड़ूंगा, न उनका ध्यान-भजन छोड़ूंगा। राजा के ऐसे
निर्भीक बचन को सुनकर भीमासुर ने हँसकर कहा—तुम बड़े
मूर्ख हो, उस भिखमंगे, नंगे, विषधर जीवों के सँग रहने वाले
पहाड़ी शंकर के किङ्कर बने हो। यदि तुम अब से भी यह काम
नहीं छोड़ते हो तो लो, मुझसे युद्ध करो और मेरे तीखे वाणों
के शिकार बनो, अथवा अपने संरक्षकों को बुलाओ। देखें,
तुम्हारा वह शंकर कैसे सहायता करता है ऐसा कहकर भीमा-
सुर अपनी तलवार की धार का पार्थिवलिंग पर ज्यों ही वार
किया, त्यों ही उस लिङ्ग से साक्षात् शंकर जी प्रकट हो गये।
उस विकराल रुद्र के रौद्र रूप को देखकर उसकी सेना काँप
उठी। शिव जी ने अपना त्रिशूल तानकर उस राक्षस से कहा
कि देखो, मैं अपने भक्तों की रक्षा कैसे करता हूं। भक्तों को
सुख देनेवाले एवं शत्रुओं (राक्षसों) को शूल देने वाले मेरे इस
त्रिशूल को देखो और अपने बचने का उपाय सोचो।

इस प्रकार देखते-देखते भगवान् शंकर ने भीमासुर का बध

कर डाला। राक्षसों का संहार होते देखकर ऋषि-मुनि प्रसन्न हुए, देव गन्धर्वों ने आकाश से पुष्पों की वृष्टि की। अन्त में भगवान् ने राजा से कहा—हे भक्तशिरोमणे ! अब तुम क्या चाहते हो, वर माँगो। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन् ! मुझे अब कुछ नहीं चाहिये। आपने इस राक्षस का वध करके तीनों लोकों को आनन्दित किया। देवता मुनियों ने भी यही कहकर प्रार्थना की, कि संसार के कल्याण के कारण आप यहां सदा निवास करें और 'भीम-शंकर' नाम से प्रसिद्ध हों। यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर जी ने वहाँ निवास किया।

इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः।
तत्रैव स्थितवान्प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः॥ ५४॥
(शि० पु० २१ अ०)

१—पूना के पास "तले गांवका" रेलवे स्टेशन है। वहाँ से २४ मील है।
२—गोहाटी A. B. रेलवे ब्रह्मपुर के बीच पहाड़ पर है।

७—रामेश्वर

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी

अपने पिताजी की आज्ञा से रामचन्द्रजी ने चौदह वर्ष वन में निवास करना स्वीकार किया था। उस वनवास के समय रावण सती सीता को हर ले गया। श्रीरामचन्द्रजी और

लक्ष्मणजी बड़ी भारी वानरी सेना लेकर समुद्र के ऊपर पुल बाँध कर लङ्का में घुस गए और वहाँ उन्होंने राक्षसों से युद्ध ठान लिया।

रावण ने इन लोगों को तुच्छ समझ कर थोड़े से साधारण राक्षस भेज दिए परन्तु इधर के वानरों ने उन्हें क्षण भर में समाप्त कर दिया। तब तो रावण ने समझा कि किसी भारी शक्ति से सामना करना है और इस लिए कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि महाबलशाली निज कुटुम्बियों को साथ लेकर रणक्षेत्र में उतर गया। इन लोगों के सामने आने पर श्रीरामजी और लक्ष्मणजी भी कमर कस के तयार हो गए। परन्तु यह था धर्म और अधर्म का युद्ध। एक ओर अपनी भार्या के उद्धाररूपी धर्म के पालन के लिए दुष्टों का संहार करने वाले महापुरुष थे और दूसरी ओर परदारापहारी देवता और मुनिगण को दुःख देने वाले नराधम। धर्म की विजय तो सर्वत्र होती ही है। इस युद्ध में भी वानरी सेना ने राक्षसों के दल को मल डाला। हनुमान् ने धूम्राक्ष को, विभीषण ने प्रहस्त और भक्षराक्ष को, सुग्रीव ने देवान्तक और नरान्तक को, लक्ष्मणजी ने त्रिशिरा और कुम्भकर्ण का अपने २ आयुधों से काल के गाल में पहुंचा दिया।

रावण को यह देख कर बड़ा क्रोध आया और उसने परम पराक्रमी इन्द्र को भी जीतने वाले पुत्र मेघनाद को युद्ध में भेजा। वह अपनी राक्षसी माया से राम और लक्ष्मण को

मोहित कर कुमुद, अङ्गद, सुग्रीव, नल, जाम्बवान् आदि महा-बलशाली वानरों को समरांगण में गिरा कर आकाश में अन्तर्धान हो गया। वह सबको देख सकता था पर उसे कोई नहीं देख पाता था।

ऐसी अवस्था देख कर कुबेर ने ऐसा जल भेजा जिसके आँखों में लगाने से छिपा हुआ भी मनुष्य दिखाई पड़ जाता था। विभीषण के कहने से सबने उस जल से आँखें धो डालीं। आँखों के धोते ही सब लोगों को आकाश में छिपा हुआ मेघनाद दिखाई दिया। लक्ष्मणजी ने दौड़ कर उसके ऊपर बाणों की वर्षा की, उसने भी इसका समुचित उत्तर दिया। इस प्रकार तीन दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। चौथे दिन लक्ष्मणजी ने उसका सिर काट लिया। इधर भगवान् रामचन्द्रजी ने ब्रह्मास्त्र से रावण के दसों सिर काट डाले। रावण के मरते ही लंका में रामराज्य हो गया।

राक्षसी सेना का विनाश कर दल बल समेत श्रीरामचन्द्र भगवान् गन्धमादन पर्वत पर विराजमान हुए। उसी समय मुनि लोग उनकी स्तुति करने के लिए पहुंचे। श्रीरामचन्द्रजी ने उनसे आदरपूर्वक कहा कि हे पूज्य मुनिगण! संसार सागर से मुक्ति पाने के लिए लोग मेरी शरण आते हैं और मैं उसको पार कर देता हूं। परन्तु स्वात्मलाभ से सन्तुष्ट प्राणिमात्र के उपकार करने वाले अहंकाररहित शान्त ऊर्ध्वरेता मुनियों की मैं सदा रक्षा करता हूँ। इसी से लोग मुझे ब्रह्मण्यदेव कहते

हैं। मुझे पुलस्त्य के कुल के विनाश से ब्रह्महत्या का पाप लगा है। मैं आप लोगों से यह जानना चाहता हूं कि उस पाप से मुझे कैसे छुटकारा मिल सकता है।

मुनियों ने विचार कर कहा कि हे जगद्रक्षाधुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी! आप संसार में भव्य आदर्श उपस्थित करने के लिए महापुण्य तथा मुक्ति के देने वाले शृङ्ग पर शिवलिंग का स्थापन कीजिए। दशग्रीव के वध का पाप इससे छूट जाएगा। लिंगस्थापन के फल का वर्णन चार मुखवाले ब्रह्मा भी नहीं कर सकते, मनुष्य तो कर ही क्या सकता है। आपके द्वारा गन्धमादन पर्वत पर संस्थापित शिवलिंग के दर्शनों का विश्वनाथजी के दर्शनों से कोटिगुणित अधिक फल होगा। हे महाभाग! आप ही के नाम पर इस लिंग का नाम पड़ेगा और इसके दर्शनों से महापातकों का भी शमन हुआ करेगा। इस लिए संसार के उपकार के लिए आप अवश्य शिवलिंग की संस्थापना इसी पवित्र पर्वत पर कीजिए।

श्रीरामजी ने मुनियों का वचन सुन कर शुभ मुहूर्त का विचार किया। दो घड़ी के भीतर ही लिंगस्थापना का मुहूर्त निकाला। श्रीरामजी ने हनुमान् को कैलास से इसी समय के भीतर शिवलिंग लाने का आदेश दिया। हनुमान् वहाँ से चले और क्षण भर में आकाश में उड़ते हुए कैलास पर पहुंचे। वहाँ उन्हें शिवजी के दर्शन न हुए इस लिए वे कुश के अग्र भाग पर खड़े हो कर प्राणायाम साधे हुए तप करने लगे। भगवान्

शंकर प्रसन्न हुए और उन्हें लिंग की प्राप्ति हो गई।

इधर मुनियों ने देखा कि पुण्यकाल निकला जा रहा है तो वे रामजी से बोले कि हे महाभाग! हनुमान् तो अभी तक आए नहीं, समय व्यतीत हो रहा है, खराब मुहूर्त में काम करने से अभीष्टसिद्धि नहीं होती। इस लिए जानकी जी के बनाए हुए इस बालू के लिङ्ग की ही स्थापना कर दीजिए।

मुनियों की आज्ञा के अनुसार रामचन्द्र जी ने ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवार को भगवान् शंकर की स्थापना की और उनकी भक्तिपूर्वक पूजा की।

लिंग थापि विधिवत करि पूजा
शिव समान प्रिय मोहिं न दूजा (१)
शिव द्रोही मम भक्त कहावै
सो नर सपनेहु मोहिं न भावै (२)
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी
सो नर मूढ़ भेद मति थोरी (३)

शंकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ वास ॥३॥ लंका काण्ड

वानर लोग सुन्दर मनोहर सुगन्धित पुष्प उस वन में से तोड़ लाए। फलों और मूलों के तो उन्होंने पर्वत लगा दिए। सभी तीर्थों और नदियों का जल भर लाए। सर्वशास्त्रपारंगत परम पुनीत महर्षियों के वेदघोष से आकाश गूँज उठा। षोड़श

उपचारों से पूजन कर श्रीरामचन्द्रजी स्तुति करने लगे।

उसी समय उस लिंग से पार्वती को साथ लिए हुए शंकर भगवान् प्रकट हुए और कहने लगे कि हे श्रीरामचन्द्रजी! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा ब्रह्मकुल के विनाश से समुत्पन्न पातक दूर हो गया। तुम्हारे हाथों से स्थापित इस लिंग का जो मनुष्य दर्शन करेगा उसके सब पाप नष्ट हो जाएँगे। इस प्रकार वर देकर वे अन्तर्धान हो गए।

श्रीरामचन्द्रजी उस सैकत लिंग की आराधना कर ही रहे थे कि इतने में हनुमान् सुन्दर लिंग लेकर आ पहुँचे। अपना परिश्रम व्यर्थ होता देख कर उन्हें दुःख हुआ और वे बोले कि यहाँ पर असंख्य वानर थे उनमें आपने मेरे ऊपर दया करके आज्ञा दी। मैं आप की आज्ञा के अनुसार शीघ्र वहाँ गया। शिवजी के न मिलने के कारण मुझे आने में देर हुई तो भी मैं समय बीतने के पहले ही आ गया। आपने मेरे आने की प्रतीक्षा कुछ भी न की और एक बालू का लिंग स्थापित कर दिया। अब कैलास के लाए गए लिंग का क्या होगा? आपने मेरे ऊपर इतनी भी दया न की, अब मैं संसार में मुँह दिखाने योग्य नहीं रह गया। इस लिए अब मैं शरीर का परित्याग कर दूँगा। ऐसा कह कर वे रामजी के चरणों पर गिर पड़े।

अपने भक्त के दुःख से रामचन्द्रजी के मन में बहुत दुःख हुआ और वे करुणार्द्र हृदय से सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि हे प्रिय भक्त! तुमने जो मेरी सेवा की है उसको मैं अच्छी

तरह से जानता हूँ। तुम्हारे आने की प्रतीक्षा न कर मैंने जो शिवलिंग स्थापित किया उसके भी औचित्य और अनौचित्य को मैं खूब समझता हूँ। जीव का जन्म-मरण, स्वर्ग और नरक में गमन अपने ही कर्मों से होता है। परमात्मा तो असंग निर्गुण और निर्लेप है। मान अपमान तो इस शरीर का हुआ करता है। आत्मा तो निरंजन, निराश्रय और निर्विकार है। तत्व ज्ञान में वाधा पहुँचानेवाला शोक तुम क्यों कर रहे हो? तुम्हें तत्वज्ञान में प्रेम करना चाहिए और सदा यह ध्यान करना चाहिए कि मेरी आत्मा स्वयं प्रकाश है उसका कभी मान-अपमान नहीं हो सकता। शरीर आदि लौकिक पदार्थों की ममता छोड़ कर धर्म का सेवन करो।

सज्जनों की सेवा किया करो। प्राणिमात्र की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा कर लो। दूसरे के दोषों की कभी चर्चा न चलाया करो। शिव, विष्णु आदि देवों की सदा भक्तिपूर्वक पूजा किया करो। सत्य का पालन किया करो और शोक का परित्याग करो। तुम्हें शान्ति मिलेगी।

तुम्हें इस समय भ्रान्ति हो रही है भ्रम बड़ा हानिकारक होता है। भ्रान्त जन को अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। वे रागद्वेष के वश में हो कर धर्म अधर्म के झगड़े में पड़ जाते हैं और स्वर्ग-नरक में चक्कर लगाया करते हैं। इस पार्थिव शरीर का उन्हें बड़ा मोह हो जाता है और उस निर्लेप आत्मा को भूल जाते हैं।

यह शरीर बड़ा ही अधम है। चन्दन, अगर, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य भी इस शरीर के संयोग से मल हो जाते हैं। संसार के सुन्दर परम स्वादिष्ट भक्ष्य पदार्थ इस शरीर के संयोग से ऐसे रूप में बदल जाते हैं कि उनके छूने में भी घृणा होती है। शीतल सुगन्धित जल इस के संगम से मूत्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसके स्पर्श मात्र से वस्तु अपवित्र हो जाती है। अति धवल एवं परम पवित्र वस्त्र भी इस शरीर के संयोग से मलिन हो जाते हैं। ऐसे मलिन शरीर को थोड़ी सी भी बुद्धि रखने वाला मनुष्य कभी अच्छा नहीं कह सकता। इसके ऊपर ममता रखना बुद्धिमानी का काम नहीं।

हे वायुनन्दन! मैं तुम को परमार्थ की बात बताता हूं। देखो! इस संसारगर्त में सौख्य का नाम भी नहीं है। मनुष्य का जीवन आदि से अन्त तक दुःखों ही से पूर्ण है। जीव पहिले तो गर्भ का दारुण दुःख भोगता है। बाल्यकाल में पराधीनता का दुःख तो असाध्य ही हो जाता है। फिर जवानी आती है और मनुष्य यौवन मद में चूर होकर लौकिक क्षणिक सुख को ही परम सुख मान बैठता है और परलोक को एक दम भूल जाता है। थोड़े ही दिनों में जवानी ढल जाती है और बुढ़ौती आ जाती है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर जीर्ण हो जाता है चलने फिरने को शक्ति नहीं रह जाती। परम प्रिय पुत्र, कलत्र आदि भी घृणा करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में दारुण कष्ट का अनुभव होने लगता है। परन्तु शरीर की ममता उस

समय भी नहीं छूटती। अन्त में शरीर से प्राण निकलने लगते हैं। उस समय एक करोड़ विच्छू के डंक मारने का कष्ट जीव को होता है। परन्तु कुछ उपाय न होने के कारण वह दारुण दुःख भोगना ही पड़ता है। मरने के अनन्तर फिर अनेक योनियों के कष्ट उठाने पड़ते हैं।

ये सब दुःख अज्ञान ही के कारण होते हैं। जब अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है उस समय उत्तम सुख प्राप्त होता है। अज्ञान की निवृत्ति कर्म से कभी नहीं होती जब होती है तब ज्ञान ही से होती है। "तत्त्वमसि", अहं ब्रह्मास्मि' आदि वेदान्त-वाक्यों के अर्थानुभव से ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान ही साक्षात् ब्रह्म है। ज्ञान की प्राप्ति गुरु के प्रसाद से मुख्याधिकारी परम विरक्त ही को होती है अन्य को नहीं। जब मनुष्य के हृदय के सब काम निवृत्त हो जाते हैं, किसी प्रकार की वासना नहीं रह जाती तभी जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है।

क्रूर कृतान्त जागते, सोते, खाते, पीते समय जीव को कवलित कर लेता है। मनुष्य को मरने से तो डरना ही नहीं चाहिए क्योंकि इस पार्थिव शरीर का तो एक दिन अन्त होना ही है। जिस प्रकार फल के पक जाने पर उनका पतन अवश्यम्भावी होता है उसी प्रकार इस शरीर का पतन अवश्य होगा। बहुत दृढ़ नीव होने पर भी समय आने पर जैसे भवन बिना गिरे नहीं मानता उसी प्रकार भोजनाच्छादन से सुदृढ़ भी शरीर जरा और मृत्यु के वश में पड़ कर नष्ट हो जाता है।

मृत्यु साथ ही साथ रहती है। कोई कितनी भी दूर चला जाए मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती। परन्तु इस मृत्यु से डरना नहीं चाहिए क्योंकि यह मृत्यु आत्मा की तो होती नहीं शरीर की होती है। आत्मा को तो न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल हानि पहुँचा सकता है और न वायु उसे सुखा सकती है*। यह आत्मा सब में एक रूप से व्याप्त है। इस में भेद नहीं। एक ब्रह्म के सिवा संसार में दूसरी कोई वस्तु ही नहीं। इस लिए तुम्हारी आत्मा और मेरी आत्मा में कोई भेद नहीं है। जो काम मैंने किया वह तुम्हारा किया हो गया, जो तुमने किया वह मेरा किया हो गया। मेरे हाथों से संस्थापित लिंग तुम्हारे ही हाथों से स्थापित समझा जाना चाहिए।

हे पवन सुत! पुण्यकाल बीता जाता था इसी से बालू का लिंग स्थापित कर दिया। तुम्हें इस पर शोक या दुःख नहीं करना चाहिए। कैलास से लाए हुए लिंग को तुम अपने हाथों से इसी पवित्र भूमि में स्थापित करो। यह तुम्हारे नाम

---

* नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ २४॥
(भगवद्गीता २ अ०)

पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा। तुमने बहुत से ब्रह्मराक्षसों का बध किया है इसलिए तुम्हें भी शिवस्थापन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि मुझको। इस लिंग के स्थापन से तुम पापमुक्त हो जाओगे।

स्वयं शिवजी के दिए हुए लिंग के दर्शन कर जो राम-नाथेश्वर के दर्शन करेगा वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाएगा। एक हजार योजन दूर बैठा हुआ भी मनुष्य यदि हनुमदीश्वर और रामनाथेश्वर का नाम लेगा उसे सायुज्य मुक्ति प्राप्त होगी। जो इन दोनों के दर्शन करेगा उसे सब यज्ञों और सब तपों का फल मिल जाएगा। इस लिए अपने पापसमुदाय की शुद्धि के लिए इस लिंग की स्थापना यहीं कर दो।

यदि तुम्हें मेरे कथन से सन्तोष न हो तो तुम इस लिंग कोव उखाड़ डालो, मैं तुम्हारे ही लाए हुए लिंग को स्थापित कर दूँगा। मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें यह आज्ञा देता हूँ कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसे उखाड़ो।

हनुमान् जी को इस आज्ञा से बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हों ने अपने मन में विचार किया कि इस बालू के लिंग के उखाड़ डालने में कितना परिश्रम होगा इसे तो मैं अनायास ही उखाड़ डालूंगा। परन्तु उन्हों ने यह विचार नहीं किया कि उस लिंग की स्थापना भगवान् रामचन्द्रजी के हाथों से स्थिर मुहूर्त में हुई थी, उसका उखाड़ना हँसी खेल नहीं है। पुण्य मुहूर्त का माहात्म्य उन्हें ज्ञात नहीं था।

हनुमान् ने सब लोगों के सामने ही उस बालू के लिंग के उखाड़ने का प्रयत्न किया। वे अपनी पूरी शक्ति लगा कर उसको हिलाने लगे पर वह तिल भर भी अपने स्थान से न डिगा। तब उन्हों ने घोर किलकिला शब्द करते हुए पुच्छ उस लिंग को लपेट लिया और बड़े वेग से आकाश की ओर उछले। उस समय सातों द्वीपों की पृथ्वी हिल गई। सभी कुलाचल डिग गए। सूर्य और चन्द्र भी डोल गए।

वह लिंग तल, अतल, वितल, सुतल, पाताल आदि तक प्रविष्ट था। उसका हनुमान् जी को इतने जोरों से धक्का लगा कि वे कोस भर दूर जा गिरे। उनके सभी छिद्रों से रक्त की धाराएँ बहने लगीं और वे मूर्च्छित हो गए। सब ने समझा कि प्राण निकल गए इस लिए हाहाकार मच गया। राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, अङ्गद, आदि दौड़ कर उस स्थान पर पहुँचे और विलाप करने लगे।

सीता जी ने अपने कोमल हाथों से उनके शरीर का स्पर्श किया और रुदन करने लगीं। भगवान् रामचन्द्रजी ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और कातर स्वर में उनके गुणों का वर्णन करने लगे। उन्हों ने कहा कि हे महावीर! तुम ने हम लोगों की बड़ी सेवा की है। ऐसे ऐसे कठिन समयों में तुम ने मेरी सहायता की जिस समय दूसरे की शक्ति काम हो नहीं दे सकती थी। तुम्हारी ही सहायता से हम लोग रावणादि राक्षसों को मार सके हैं। हे अंजनानन्दन! तुम हम लोगों को

मार्ग ही में छोड़ कर क्यों चले गए? अब मुझे संसार में किसी से कुछ काम नहीं। न तो मुझे राज्य चाहिए और न सीता। मैं अब अपने शरीर का परित्याग करूँगा।

इतने में ही हनुमान् जी की मूर्च्छा निवृत्त हो गई और उनका चित्त स्वस्थ हो गया। अपने सामने भगवान् को देख कर उनकी आँखें खुल गईं और उन्हें हनुमान् ने साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर के रूप में देखा। वे उनके चरणों पर गिर गए और स्तुति करने लगे।

उनकी स्तुति से रामजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि तुमने यह काम अज्ञान से किया उसका फल मिल गया। मेरे स्थापित इस लिंग को संसार की समूची शक्ति भी नहीं उखाड़ सकती। महादेव के अपराध से तुमको यह फल मिला, अब कभी शिव जी का विरोध मत करना।

हनुमान् जी ने रामनाथेश्वर के समीप ही कैलास से लाए हुए लिंग का संस्थापन करा दिया। रामचन्द्र जी के वचन से उस लिंग के दर्शन किये विना रामनाथेश्वर के दर्शनों का कुछ फल नहीं होता।

रामचन्द्र जी ने उनकी पूजा के लिए अनेकों ग्राम लगा दिए। जिनकी आय से पूजा करने वाले सद्ब्राह्मणों के कुटुम्ब का पालन हो सके। शिव जी के भोग के लिए भी अनेकों गाँव लगा दिए गए। हार, केयूर, कटक, कुण्डल आदि अनेक

आभरण समर्पण किये और सुन्दर रेशमी वस्त्र पहिरने के लिये सेवा में उपस्थित किये।

भगवान् रामचन्द्र ने रामनाथेश्वर और हनुमदीश्वर का माहात्म्य स्वयं वर्णन किया है। यथा:—

जे रामेश्वर दर्शन करिहहिं ❀ ते तनु तजि मम धाम सिधरिहहिं॥
जे गंगाजल आनि चढ़ाइहिं ❀ सो सायुज्य मुक्तिवर पाइहिं॥

स्वयं हरेण दत्तं तु हनुमन्नामकं शिवम्।
सम्पश्यन् रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥६१॥
योजनानां सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिंगं हनूमतः।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात् ॥६२॥
तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारि कृत्स्नशः।
येन दृष्टौ महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ ॥६३॥

(स्क० पु० ब्र० खं० से० मा० ४५ अ०)

रामेश्वरम् विख्यात।

८-नागेश

शिवभक्त 'सुप्रिय' वैश्य

'सुप्रिय' नामक एक वैश्य शिवजी का परम भक्त था। वह धर्मात्मा, सदाचारी तथा शैवधर्म-परायण था। वह निरन्तर भस्म-रुद्राक्ष धारण किया करता था। बिना शिवपूजन किये जल तक नहीं ग्रहण करता। शिवजी को बिना भोग लगाये वह कभी भी खाद्य पदार्थों का स्वयं भोजन करना महापाप समझता था।

एक दिन वह वैश्य व्यापार से निवृत्त होकर नाव द्वारा किसी दूसरी जगह जा रहा था। रास्ते में दैववश 'दारुक' नामक एक राक्षस नौका में स्थित मनुष्यों को पकड़ कर अपनी पुरी में ले गया। वहाँ दृढ़ बन्धन में उन्हें बाँधकर कारागार में डाल दिया। जेल में भी इस प्रकार शिवभक्ति देखकर सभी मनुष्य चकित हो रहे; क्योंकि पूजनोपरान्त सुप्रिय वैश्य शिव-पूजन करता ही रह गया। इस प्रकार पूजनोपरान्त सुप्रिय शेष कैदियों को शिवपूजन का उपदेश करता एवं उनका माहात्म्य समझाया करता था। मंत्र जप एवं शिवलिंग की पार्थिवपूजा की विधि बतला कर, उन लोगों की इधर अभिरुचि पैदा करता था। थोड़े ही दिनों में कारागार के सभी कैदी शिवभक्त हो गये और लगे श्रीशंकरजी की तन-मन से आराधना करने।

इस प्रकार उस वैश्य के शिवाराधन करते २ छः मास निर्विघ्न समाप्त हो गये।

एक दिन दारुक राक्षस के किसी दूत ने जाकर उससे जेल की सारी अद्भुत बातें कह सुनाईं। दूत बोला—महाराज! आपने जिन्हें कैद किया है, वे सभी किसी देवता की आराधना में निमग्न रहते हैं और उनमें सुप्रिय नामक वैश्य पुत्र तो निरन्तर ध्यान लगाये रहता है। यह सुन क्रोध से लाल होकर दाँत पीसता हुआ वह दैत्येन्द्र कारागार में एकाएक आ पहुँचा। वहाँ दूत की सारी बातें सत्य देखकर वैश्यशिरोमणि सुप्रिय से उसने पूछा— ऐ वैश्य! तू यह क्या कर रहा है? आँख मूंदकर कौन सा षड्यन्त्र रच रहा है? सत्य २ कहो, नहीं तो तुम आज सीधे यमलोक भेजे जावोगे। सुप्रिय ने कुछ उत्तर न दिया; बल्कि निडर होकर शिवध्यान में ही ज्यों का त्यों लगा रहा। यह दशा देखकर वह अत्यन्त क्रोधित हो, अन्य राक्षसों को उसे मारने के लिये भेजा। राक्षसों को आते हुए देखकर वह वैश्य शिवजी का ध्यान करते हुए उनके नामों का उच्चारण करने लगा।

हे भक्तभयहारी शिवजी! हे त्रिलोकेश शंकरजी! हे भक्तवत्सल प्रभो!! हे दुष्टदल-निकन्दन, दयालु देवदेव!! अपने इस दीन जनपर दया करो और दुष्ट के हाथ से प्राणों की रक्षा करके मुझे अपना विमल दर्शन दो। इस प्रकार उस वैश्य की करुण स्तुति सुनकर श्री शंकरजी प्रसन्न हो गये और उस

कारागार के चौहद्दी के मध्य, एक ऊँचे स्थान पर चमकते हुए सिंहासन में स्थित, ज्योतिःस्वरूप शिवलिंग का दर्शन देकर उसी में सपरिवार अपने पंचवदन त्रिनेत्र, सिर मर गंगा तथा ललाट में चन्द्रमा और समस्त अंगों में विभूति रमाये हुए नागयज्ञोपवीती श्री शंकर जी ने दर्शन दिया। वैश्य ने फिर स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उसे पाशुपतास्त्र प्रदान किया। उसी अस्त्र से सम्पूर्ण राक्षसों का विनाश करके सुप्रिय वैश्य शिवधाम को चला गया। भगवान् ने भी यह आदेश किया कि जो मनुष्य अपने वर्ण-धर्म में स्थित रहते हुए मेरी आराधना करेगा और इस ज्योतिर्लिंग का दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। आज से इस लिंग का नाम 'नागेश' पड़ा। इस नागेश लिंग की उत्पत्ति एवं माहात्म्य जो ध्यान से सुनेगा, वह बुद्धिमान् संसार में समस्त सुखों का भोग करके अन्त में मुक्त होकर परमपद को पावेगा।

एतद्यश्शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्।
सर्वान्कामानियाद्धीमान् महापातकनाशनान्॥

(शि० पु० श० को रु० सं ४ अ)

---

(१) द्वारका गोपतलाइ पर। (२) अत्रढाग्राम गंगा खेड़से ३० मील।

९-श्रीविश्वेश

श्रीविश्वनाथजी

जीवमात्र में जैसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं,मनुष्यों में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, वसे ही तीर्थों में काशी श्रेष्ठ है! क्योंकि *वाराणसी साक्षात् करुणामयी अलौकिक मूर्ति है। जहां प्राणिमात्र सुख पूर्वक देह त्याग कर उसी समय विश्वेश्वर के ज्ञानरूप ज्योति में प्रवेश कर तद्रूप कैवल्य पद को धारण करते हैं। यह पञ्च क्रोशात्मिका काशीनामक भूमि यथार्थ में तेजोमय शिवलिंग (मूर्तिमान्) है। जिस तेजोमय लिंग का भगवान् नारायण (विष्णुजी) और ब्रह्मा ने (पहले) दर्शन किया था, वही लिंग लोक और वेद में काशी नाम से कहा गया है।

ब्रह्माजी ने भगवान् की आज्ञा से ब्रह्माण्ड की रचना की। तदनन्तर अपने २ कर्मों से बँधे प्राणी मुझे किस प्रकार प्राप्त करेंगे ऐसा विचार कर दयालु शिवजी ने पचक्रोशी काशी) उस ब्रह्माण्ड से पृथक् रखी। यह लोकों में कल्याण देने वाली, कर्मों का नाश करने वाली तथा मोक्ष को प्रकाश करने वाली इस नगरी में मुक्ति देने वाले ज्योतिर्लिंग को भगवान् शिवजी ने स्थापित किया है।

---

* ब्रह्माणाजंगमंतीर्थं।

‡ अमरा मरणं सर्वे वांछंती परेचके ॥२८॥

ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर भी यह काशी नाश को प्राप्त नहीं होती, प्रलयकाल में भी शिवजी इसे त्रिशूल पर धारण करते हैं।

काशी से अन्य तीर्थों में जीवों को सारूप्यादि मुक्ति प्राप्त होती है परन्तु यहां प्राणियों को केवल उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है जिन प्राणियों की कहीं गति न हो उसकी वाराणसी पुरी में गति होती है। * यहां पर स्वयं देवता भी मरण की इच्छा करते हैं। औरों की तो बात ही क्या है। यह सर्वदा शिव की प्रिय तथा भुक्ति-मुक्ति को देने वाली है। ब्रह्मा, विष्णु सिद्ध, योगी, तथा मुनि सभी काशीजी की प्रशंसा करते हैं।

अविमुक्तपुरी काशीजी ने शंकर जी से प्रार्थना की कि हे कालरूप भगवान् रोग की औषधि तीनों लोकों के पति आप ब्रह्मा, विष्णु देवताओं के साथ यहां पर निरंतर निवास करो। इस प्रकार प्रार्थना करने पर सबके राजा विश्वनाथजी ने लोकों के उपकार के अर्थ यहां निवास किया।

इत्येवं प्रार्थितस्तेन विश्वनाथेन शंकरः।
लोकानामुपकारार्थं तस्थौ तत्रापि सर्वराट् ॥३६॥
(शि० पु० ४ सू० अ० २७)

---

* भुक्तिमुक्ति प्रदा काशी सर्वदा शंकरप्रिया॥ शि० पु० को० स० ४ अ २७ विख्यात काशी बनारस रेलवे स्टेशन

१०-त्र्यम्बकेश्वर

शिवभक्त दुस्सहर्षि

गोदावरी के तट पर पूर्वकाल में दुस्सह नामक एक बड़े ऋषि रहते थे। उसने भगवान् शिवजी का ध्यान धरते हुए कठिन तप में स्थित हो उत्तम रीति त्रिकाल शास्त्र विधि से पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, अक्षत, पुष्प, बिल्वपत्र, दूर्वा, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पुंगीफल, ऋतुफल-इत्यादि से पूजन कर श्रेष्ठ त्र्यम्बक (१) मन्त्र का तीन करोड़ जप करके भगवान् को प्रसन्न किया। और सब कामनाओं के फल-स्वरूप शिवजी का दर्शन किया। वही ज्योतिर्लिंग रूप से वहां भगवान् स्थित हो गये। जो त्र्यम्बकेश्वर जी के समीप त्र्यम्बक मन्त्र को जपता है, वह महा सिद्धि को प्राप्त होता है। उस शिवभक्त को दर्शन करने वाले भी पातक से रहित और मुक्त हो जाता है।

(प्रभास० ख० अ० ८६)

---

[१] ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वःभुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ।

त्र्यम्बकेश्वर, नासिक कसबे से १८ मील पर है।

११-केदारेश्वर

नर-नारायण

प्राचीनकाल में भगवान् के अंश नर और नारायण ने तपस्या करने की अभिलाषा से बद्रिका बन में आश्रम बनाया उन्होंने भगवान् शंकर से प्रार्थना की कि वे पार्थिवलिंग में विराजमान हों। यह प्रार्थना भगवान् शिवजी ने स्वीकार करली और नर-नारायण-निर्मित लिंग में प्रविष्ट हो, उसमें निवास करने लगे।

वे देव उस लिंग की षोड़शोपचार से परम श्रद्धा के साथ आराधना करने लगे और वहीं कठिन तपस्या करने लगे। निराहार तथा जितेन्द्रिय होकर वे रातदिन भगवच्चरण का चिन्तन ही करते थे, अन्य कुछ भी व्यापार नहीं था।

इस प्रकार तप करते करते बहुत समय व्यतीत हो गया। तब श्री आशुतोष भगवान् प्रकट होकर बोले कि हे नर-नारायण! मैं तुम लोगों की तपस्या से परम सन्तुष्ट हूँ। जो इच्छा हो वर माँगो। मैं बहुत प्रसन्नता पूर्वक दूँगा।

शङ्कर भगवान् के ऐसे वचन सुन कर नर और नारायण ने हाथ जोड़ प्रार्थना की कि हे देवेश! हे जगन्निवास! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिए कि

आपका निवास सदा इस तीर्थ में हो। आप स्वयं अपने रूप से इस क्षेत्र में भक्तों की पूजा स्वीकार करें और उन्हें संसार-बन्धन से मुक्त होने में सहायता करें। भगवान् सदाशिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ज्योतिः स्वरूप हो स्वयं उस तीर्थ में विराजमान हुए।

यह ज्योतिर्लिंग केदारेश्वर के नाम से विख्यात हुआ। उस स्थान में जाकर अनेकों देवता तथा असंख्यों मुनियों ने भगवान् की आराधना की और अभिलषित फल पाया।

एक बार पाण्डव लोग इस पवित्र बद्रिकाश्रम में गए। भगवान् शिव ने उन्हें वहाँ देख माया से महिष का रूप धारण कर लिया और वहाँ से चलने लगे। परन्तु पाण्डवों ने भगवान् को पहचान लिया और उन्हें पकड़ लिया और परम भक्ति पूर्वक स्तुति की। उनकी भावमयी स्तुति सुन कर भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हुए और अपना रूप धारण कर प्रकट हुए। तब भगवान् ने कहा कि मैं तुम लोगों से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वर माँगना हो माँगो। पाण्डवों ने भगवान् की स्तुति कर अनेक वर प्राप्त किए और संसार में अनेक प्रकार के सुख भोग कर वे अन्त में परमपद को प्राप्त हुए।

इन केदारेश्वर के दर्शनों के लिए अब भी असंख्य स्त्री-पुरुष जाते हैं। योगियों की सिद्धि का तो यह प्रधान स्थान है। यहाँ पिण्डदान करने से पितरों का उद्धार होता है

इनके पूजन का माहात्म्य स्कन्द पुराण में इस प्रकार लिखा है:—

> यः पूजयति केदारं स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
> तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पितॄनुद्दिश्य भारत ॥
> ददाति श्राद्धं विधिवत्तस्य प्रीताः पितामहाः ।
> (रेवा ख० २२३-१७)

हरिद्वारसे १६४ मील

१२-घुश्मेश्वर

सुधर्मा एवं घुश्मा

दक्षिण दिशा में देवगिरि पर्वत के समीप भारद्वाज कुल में उत्पन्न सुधर्मा नामक एक तपस्वी ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा पठन-पाठन में अपना समय व्यतीत करते थे। त्रिकाल सन्ध्या देवार्चन एवं अग्निहोत्र भी किया करते थे। वे बड़े धनी थे और अतिथियों के सत्कार में पूरा सौजन्य प्रकट करते थे। सत्कार्य्य में ही उनका पूरा समय और धन व्यतीत होता था।

उनकी पत्नी का नाम सुदेहा था। सुदेहा भी अपने पति के समान ही धर्मपरायणा और गुणवती थी। पति की सेवा करना और उनकी आज्ञा का यथावत् पालन करना ही उसका एक-मात्र कार्य्य था। इन लोगों का सत्कार्य्य में समय व्यतीत करते,

आयु का अधिकांश समय व्यतीत हो गया। इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं; परन्तु तब तक उनको कोई भी सन्तान न थी और न उनकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी ही था।

सन्तति के अभाव से दोनों बहुत चिन्तित रहा करते थे। सुदेहा को पुत्र न होने से जो दुःख था, उसका अनुमान निःसन्तान माताएँ ही कर सकती हैं। सुजान सुधर्मा अपनी पत्नी को शास्त्र-पुराणों की अनेक बातें सुना कर बहुत समझाते थे और कहते थे, कि "हे प्रिये! संसार में कौन किसका पिता, कौन किसका माता और कौन किसका पुत्र है? यह संसार स्वार्थ के लिये सब कुछ करता और पाप-पुण्य का भागी बनता है। भला, पुत्र उत्पन्न होकर ही क्या करेगा?" परन्तु सती सुदेहा को इन बातों से सन्तोष न होता। वह सदा कुछ उपाय करने की ही प्रार्थना किया करती थी और कहा करती कि "यदि आप सन्तान का कुछ उपाय नहीं करेंगे तो मैं अपना शरीर त्याग दूंगी।"

एक दिन सुदेहा ने अपने पति से कहाः—"प्राणनाथ! मेरे गर्भ से तो सन्तान होने की अब कोई सम्भावना है ही नहीं। अतः आप दूसरा विवाह कर लें तो बड़ा अच्छा हो और हम लोगों की वृद्धावस्था भी सुखपूर्वक कट जाय। दूसरी भार्या से अवश्य ही पुत्र होगा—यह मेरा आन्तरिक विश्वास है। सुधर्मा ने कहा—"अभी तो तुमको कहने में अच्छा मालूम पड़ता है; परन्तु जब सपत्नी (सवति) आ जायगी, तब कष्ट पावोगी। और घर में अशान्ति का राज्य हो जायगा। तुम दोनों आपस में

कलह करोगी और मेरे भजन में बाधा होगी।"

सुदेहा ने पति की एक न मानी और घुश्मा नाम की अपनी एक बहिन को बुलाकर उसके साथ अपने पति का द्वितीय विवाह करा ही दिया! अब घुश्मा अपने पति देव की तथा बहिन की भी समान सेवा करने लगी। सुदेहा को वह अपनी माता से बढ़ कर मानती और सदा उसी की आज्ञा में रहती थी। उसका नियम था कि वह प्रति दिन १०१ पार्थिव शिवलिंग बना कर विधिवत् उनकी पूजा करती और अन्त में उन्हें एक तालाब में छोड़ देती थी।

इस प्रकार सदाशिव भगवान् की आराधना करते २ बहुत काल बीत गये। एक दिन भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उसको सर्वगुण सम्पन्न तेजस्वी एक पुत्र होने का वरदान दिया। शिवजी के वर प्रसाद से घुश्मा के गर्भ से भाग्यवानों के सभी लक्षणों से युक्त एक सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। उस अद्भुत बालक को देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और अनेक प्रकार के आनन्द मनाने लगे।

सुदेहा पहिले तो बालक को देख बहुत प्रसन्न हुई; परन्तु कुछ समय बीतने पर उसके मन ईर्ष्या (डाह) का अंकुर पैदा हुआ और वह अपनी सपत्नी तथा उसके पुत्र को देख-देखकर जलने लगी। ज्यों २ वह लड़का बढ़ता जाता था, त्यों २ सुदेहा का हृदय दुःखित होता जाता था। जब समय आने पर उसका विवाह हुआ और उसकी स्त्री घर में आई, तब तो वह जल-

भुन कर खाक हो गई, घर के सब लोग उसका आदर करते तथा उसकी पूरी सेवा करते थे। पर सुदेहा के हृदय की अग्नि शान्त नहीं होती थी। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि 'मेरे हृदय की शान्ति घुश्मा के आँसुओं से ही हो सकती है'।

इसी निश्चय के अनुसार सुदेहा ने रात के समय, अपनी स्त्री की शय्या पर सोये हुए सपत्नी के पुत्र को छूरा से टुकड़े २ कर डाला। उन टुकड़ों को रात ही रात किसी समीपवर्ती तालाब में फेंककर वह स्वयं चुपचाप अपनी कोठरी में जाकर सो गई। इधर सबेरा होते ही सब लोग अपने २ नित्य-कृत्य में लग गये। सुधर्मा सन्ध्या-पूजा करने लगे, घुश्मा शिवार्चन करने लगी और सुदेहा भी उस दिन गृहकार्य्य में तत्पर हो काम करने लगी। उधर जब बहू की नींद खुली तो उसने अपने पति को न पाया;प्रत्युत शय्या को रक्त से एकदम रंगा हुआ पाया। वह बेहोश हो गई, उसके हृदय सूख गये। किसी प्रकार होश में आकर विलाप करती हुई उस नव-वधू ने घर के लोगों को यह कु-सन्देश सुनाया। सुदेहा ने जब यह समाचार सुना तो छाती पीट २ कर रोने लगी परन्तु सुधर्मा और घुश्मा दोनों अपने नियम का परित्याग न कर, देवार्चन समाप्त करने में लगे रहे और अधिक विचलित नहीं हुए। उन लोगों का यह पूर्ण विश्वास था कि जिस परमात्मा ने ऐसा सुन्दर पुत्र दिया है, वही उसकी रक्षा भी करेगा। वे मानते थे कि 'शिव-भक्तों का त्रिकाल में कभी कोई अनिष्ट न कर सकता।'

मध्याह्न होने पर घुश्मा अपने प्रतिदिन के नियमानुसार पार्थिव लिङ्गों का प्रवाह करने के लिये उसी तालाब में गई और वहाँ से ज्यों ही घर को लौटने लगी, त्योंही उसका पुत्र उस तालाब से निकल कर पुकारने लगा—"माताः! मैं मरकर फिर जी उठा हूं, मुझे अपने श्रीचरणों को स्पर्श कर लेने दो"—यह सुनते ही उसकी माता विस्मित-सी खड़ी हो गई और वह आकर चरणों पर गिर पड़ा।

घुश्मा ने भगवान् की माया की मन ही मन खूब प्रशंसा की, और जिस प्रकार पहिले मरण सुन कर दुःखित न हुई थी, उसी प्रकार जीवन सुनकर अब आनन्दित भी न हुई। इस अपूर्व धीरता एवं समता को देखकर आशुतोष भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और दर्शन देकर कहने लगे—"घुश्मे! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो। तुम्हारी सपत्नी ने तुम्हारे पुत्र को काट डाला था, मैं इसको अपने त्रिशूल से स्वयं मारूँगा।"

घुश्मा ने हाथ जोड़कर कहाः—"प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपया मेरी बहिन की रक्षा करें। उपकारी के साथ अपकार करने वाला अवश्य दण्ड का भागी होता है; और उसे प्राणदण्ड देना चाहिये भी; परन्तु आपके दर्शन से वह अब पापरहित हो गई। इसलिये वह प्राणदान देने के योग्य हो गई। आपके दर्शन का प्रभाव भी भक्तों पर तभी पड़ेगा। नहीं तो "दर्शन से अघ जाँय"—यह कथन व्यर्थ होगा। हे भगवन्!

उसकी प्राणरक्षा से मुझे बड़ा लाभ होगा। क्योंकि शास्त्र-पुराणों में मैंने सुना है कि जो व्यक्ति अपकार करने वाले के प्रति उपकार करता है, उसके मुख-दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं। इसलिये दयानिधान! मेरे ऊपर दया कीजिये और इस नीति एवं धर्म-संगत कार्यों से मुझे लाभ उठाने दीजिये।" मैं यही चाहती हूं। शिवजी ने फिर कहा—"मैं तुम्हारे इस पवित्र भाव से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुझे इसके अतिरिक्त जो वर माँगना हो, माँग लो, मैं देने को तैयार हूँ।"

घुश्मा ने निवेदन किया—"हे महेश्वर! आप कृपा करके इस स्थान में निवास कीजिये, जिससे संसार का कल्याण हो"। महादेवजी ने प्रसन्न होकर "एवमस्तु" कहा, तभी से भगवान् शंकर जी साक्षात् वहाँ रहने लगे और "घुश्मेश्वर" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस तालाब का नाम "शिवालय" पड़ा। भगवान् ने यह भी कहा कि आज से तुम्हारे वंश का विस्तार होगा। उसमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य अग्निहोत्र करने वाले परम विद्वान् होंगे, धन-धान्य की उन्हें कभी कमी न होगी और वे दीर्घायु होकर शिवलोक (मुक्तधाम) को जाया करेंगे।"

ऐसा कहकर शिवजी ने उसी समय वहीं शिवलिंग का रूप धारण किया और अपने उस दिव्य रूप को देखते २ अन्तर्धान कर लिया। उसी दिन से सुधर्मा के कुटुम्ब का पारस्परिक द्वेषभाव दूर हो गया और सब लोग प्रेमपूर्वक परमानन्द का उपभोग करने लगे।

घुश्मेश्वर महादेव के दर्शन करने से सब पाप दूर हो जाते हैं और सुख को वृद्धि उसी प्रकार होती है जिस प्रकार शुक्ल-पक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होती है। शिवपुराण में इसी प्रकार लिखा है:—

ईदृशं चैव लिङ्गं च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
सुखं संवर्धते पुंसां शुक्लपक्षे यथा शशी ॥१॥

(शिव पु० ज्ञान० खं० ५२ अ० ८२)

---

(१) सोमनाथेश्वर—विरावल से २॥ मील "सोमनाथ" पटन एक कसवा जूनागढ़ राज्य में है । (२) मल्लिकार्जुन—विनूगोंडा मरकापुर रोड स्टेशन से जाना होता है। (३) महाकाल विख्यात उज्जैन B. B, & C. I. रेलवे । (४) ओंकारेश्वर 'मोरतक्का' स्टेशन से जाना होता है B. B. & C. I. रेलवे । (५) वैद्यनाथ—(६) भीमशंकर—(७) रामेश्वर—रामेश्वरम् विख्यात। (८) नागेश—(९) विश्वनाथ—विख्यात काशी बनारस रेलवे स्टेशन । (१०) त्र्यम्बकेश्वर - त्र्यम्बक नासिक से १८ मील । (११) केदारेश्वर—हरिद्वार से १४६ मील । (१२) घुश्मेश्वर—दौलताबाद से ६ मील हैदराबादराज्य में।

१ वैद्यनाथ धाम E.I. जसीडीह जंक्सन से जाना होता है। दूसरा पैठनस से ३० मील पर हैदराबाद राज्य में है।

१ भीमशंकर पूना के पास "तले गांव में है" दूसरा गोहाटी ब्रह्मपुत्र के बीचमें पहाड़ पर है।

१ नागेश द्वारका गोपतलाइ पर है। दूसरा अवढ़ा ग्राम में है।